रस
मोड्यूल 1

साहित्य का नाम आते ही रस का नाम स्वतः आ जाता है। इसके बिना साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने साहित्य के लिए रस की अनिवार्यता को समझा और इसे साहित्य के लिए आवश्यक अंग बताया। वास्तव में रस काव्य की आत्मा है।

किसी साहित्य को पढ़कर जब व्यक्ति कविता के भावों से तादात्म्य स्थापित कर लेता है, तब इस प्रक्रिया में उसके मन के स्थायी भाव, रस में परिणत हो जाते हैं। इस तरह काव्य से जो आनन्द प्राप्त होता है, वह जीवन के अनुभवों से प्राप्त अनुभवों जैसा होकर भी उससे ऊँचे स्तर को प्राप्त कर लेता है। यह आनन्द व्यक्तिगत संकीर्णता से अलग है।

‘रस’ शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

रस शब्द की व्युत्पत्ति ‘रस्यते असौ इति रसः’ के रूप में की गई है, अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाए, वही रस है; परन्तु साहित्य में काव्य को पढ़ने, सुनने या उस पर आधारित अभिनय देखने से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे ‘रस’ कहते हैं।

सर्वप्रथम भरतमुनि ने अपने ‘नाट्यशास्त्र’ में रस के स्वरूप को स्पष्ट किया था। रस की निष्पत्ति के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है–

“विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।” अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस प्रकार काव्य पढ़ने, सुनने या अभिनय देखने पर विभाव आदि के संयोग से उत्पन्न होनेवाला आनन्द ही ‘रस’ है।

काव्य में रस का वही स्थान है, जो शरीर में आत्मा का है। जिस प्रकार आत्मा के अभाव में प्राणी का अस्तित्व सम्भव नहीं है, उसी प्रकार रसहीन कथन को काव्य नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार रस ‘काव्य की आत्मा’ है।

रस-सूत्र

रस उत्पत्ति को सबसे पहले परिभाषित करने का श्रेय भरत मुनि को जाता है। उन्होंने अपने 'नाट्यशास्त्र' में रस के आठप्रकारों का वर्णन किया है। रस की व्याख्या करते हुए भरतमुनि कहते हैं कि सब नाट्य उपकरणों द्वारा प्रस्तुत एक भावमूलक कलात्मक अनुभूति है। रस का केंद्र रंगमंच है। भाव रस नहीं, उसका आधार है किंतु भरत ने स्थायी भाव को ही रस माना है।

रस सिद्धान्त भारतीय काव्य-शास्त्र का अति प्राचीन और प्रतिष्ठित सिद्धान्त है। नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि का यह प्रसिद्ध सूत्र 'रस-सिद्धान्त' का मूल हैं-

विभावानुभावव्याभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस रस सूत्र का विवेचन सर्वप्रथम आचार्य भरत मुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में किया।

साहित्य को पढ़ने, सुनने या नाटकादि को देखने से जो आनन्द की अनुभूति होती है, उसे 'रस' कहते हैं। रस के मुख्य रुप से चार अंग माने जाते हैं, जो निम्न प्रकार हैं -

विभाव

विभाव जो व्यक्ति वस्तु या परिस्थितियाँ स्थायी भावों को उद्दीपन या जागृत करती हैं, उन्हें विभाव कहते हैं। विभाव दो प्रकार के होते हैं-

(i) आलम्बन विभाव - जिन वस्तुओं या विषयों पर आलम्बित होकर भाव उत्पन्न होते हैं, उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं; जैसे-नायक-नायिका।

आलम्बन के भी **दो भेद** हैं-

(अ) आश्रय जिस व्यक्ति के मन में रति आदि भाव उत्पन्न होते हैं, उसे आश्रय कहते हैं।

(ब) विषय जिस वस्तु या व्यक्ति के लिए आश्रय के मन में भाव उत्पन्न होते हैं, उसे विषय कहते हैं।

(ii) उद्दीपन विभाव - आश्रय के मन में भावों को उद्दीप्त करने वाले विषय की बाह्य चेष्टाओं और बाह्य वातावरण को उद्दीपन विभाव. कहते हैं; जैसे- शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के मन में आकर्षण (रति भाव) उत्पन्न होता है। उस समय शकुन्तला की शारीरिक चेष्टाएँ तथा वन का सुरम्य, मादक और एकान्त वातावरण दुष्यन्त के मन में रति भाव को और अधिक तीव्र करता है, अतः यहाँ शकुन्तला की शारीरिक चेष्टाएँ तथा वन का एकान्त वातावरण आदि को उद्दीपन विभाव कहा जाएगा।

अनुभाव

अनुभाव आलम्बन तथा उद्दीपन के द्वारा आश्रय के हृदय में स्थायी भाव जागृत या उद्दीप्त होने पर आश्रय में जो चेष्टाएँ होती हैं, उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनुभाव चार प्रकार के माने गए हैं-कायिक, मानसिक, आहार्य और सात्विका सात्विक अनुभाव की संख्या आठ है, जो निम्न प्रकार है-

- स्तम्भ
- स्वेद
- रोमांच
- स्वर- भंग
- कम्प
- विवर्णता (रंगहीनता)
- अश्रु
- प्रलय (संज्ञाहीनता)

संचारी भाव

संचारी भाव आश्रय के चित्त में उत्पन्न होने वाले अस्थिर मनोविकारों को संचारी भाव कहते हैं। इनके द्वारा स्थायी भाव और तीव्र हो जाता है। संचारी भावों की संख्या 33 है- हर्ष, विषाद, त्रास, लज्जा (व्रीड़ा), ग्लानि, चिन्ता, शंका, असूया, अमर्ष, मोह, गर्व, उत्सुकता, उग्रता, चपलता, दीनता, जड़ता, आवेग, निर्वेद, धृति, मति, विबोध, वितर्क, श्रम, आलस्य, निद्रा, स्वप्न, स्मृति, मद, उन्माद, अवहित्था, अपस्मार, व्याधि, मरण। आचार्य देव कवि ने 'छल' को चौंतीसवाँ संचारी भाव माना है।

रस के प्रकार

आचार्य भरतमुनि ने नाटकीय महत्त्व को ध्यान में रखते हुए आठ रसों का उल्लेख किया-शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स एवं अद्‌भुत। आचार्य मम्मट और पण्डितराज जगन्नाथ ने रसों की संख्या नौ मानी है-शृंगार, हास, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत और शान्त। आचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य को दसवाँ रस माना है तथा रूपगोस्वामी ने 'मधुर' नामक ग्यारहवें रस की स्थापना की, जिसे भक्ति रस के रूप में मान्यता मिली। वस्तुत: हिंदी में रसों की संख्या दस है, जिनका वर्णन निम्नलिखित है-

रस	स्थायीभाव
• श्रृंगार रस	रति
• हास्य रस	हास
• करुण रस	शोक
• वीर रस	उत्साह
• रौद्र रस	क्रोध
• भयानक रस	भय
• बीभत्स रस	जुगुप्सा (घृणा)
• अद्‌भुत रस	विस्मय
• शान्त रस	निर्वेद (वैराग्य)
• वात्सल्य रस	वत्सल

रस की उत्पत्ति प्रक्रिया